**International Journal of Hindi Research**
**ISSN: 2455-2232, Impact Factor: RJIF 5.22**
**www.hindijournal.com**
**Volume 3; Issue 3; May 2017; Page No. 49-54**

# डॉ0 ज्ञान सिंह मान के उपन्यासों में नारी चेतना : आर्थिक संदर्भ

**मीनू**

शोधर्थी, पीएच.डी, (हिन्दी), सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान, भारत।

## प्रस्तावना

### अर्थ की परिभाषा एवं स्वरूप

सामान्य रूप से अर्थ का तात्पर्य धन से लिया जाता है, लेकिन गूढ़ अर्थ में जिसके द्वारा हम अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं, वे सभी वस्तुएँ धन का रूप ले लेती है। आर्थिक परिस्थितियाँ मनुष्य और समाज के मन तथा मनोविज्ञान को स्थायी रूप से प्रभावित किया करती है। भारतीय संस्कृति ने भी अर्थ का महत्त्व स्वीकार किया है और तभी मनुष्य के चार पुरुषार्थों में इसे एक प्रमुख स्थान दिया है। अबाधित होकर अर्थ अनर्थ में परिवर्तित हो जाता है। यही सोचकर इससे अधिक प्राथमिकता धर्म को दे दी गई। लोक तो धर्म को भी इसके बाद स्थान देने की प्रवृत्ति प्रदर्शित करता हुआ कहता है 'भूखे भजन न होय गोपाला, ले लो अपना कण्ठी माला।'[1] 'अर्थ को जीवन का महत्त्वपूर्ण विधायक तत्त्व स्वीकार किया गया है। अर्थ ही समाज की शिराओं में बहने वाला वह रक्त है, जो सम्पूर्ण समाज का जीवन संचालित करता है।'[2]

'जिन वस्तुओं के उत्पादन के लिए मनुष्य को परिश्रम करना पड़ता है, उन्हें आर्थिक वस्तुएँ कहा जाता है इन वस्तुओं को प्राप्त करने के लिए 'अर्थ' की आवश्यकता होती है तथा आर्थिक वस्तुओं के उत्पादन, उपभोग, विनिमय और वितरण से संबंधित मानवीय क्रियाओं को ही हम आर्थिक क्रियाएँ कहते हैं।[3]

जीवन की आवश्यकताओं ने मूल्य को आर्थिक रूप दिया है। सर्वमान्य के जीवन में मूल्य अपने आर्थिक रूप में ही प्रयोग में आता है। अर्थशास्त्रा ने मूल्यों को दो अर्थों में लिया है–व्यवहार के अर्थ में मूल्य वस्तु की उस क्षमता को व्यक्त करता है जो मानव की आवश्यकताओं की पूर्ति करने एवं संतोष देने में सहायक है। विनियम के अर्थ में यह एक वस्तु का दूसरी वस्तु से आदान–प्रदान का सूचक है, जो वर्तमान युग में धन के रूप में किया जाता है, जिसे वस्तु की कीमत या मूल्य कहते हैं।[4]

'अर्थ' मानव की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। यह संपूर्ण मानवीय क्रियाओं का संचालक बन गया है। व्यक्ति की समाज में क्या स्थिति है। अतः उसकी प्रतिष्ठा का मापदंड भी यही अर्थ है। आर्थिक रूप से सम्पन्न व्यक्ति ही समाज में श्रेष्ठ स्थान पाने का अधिकारी है। अतः मानव की संपूर्ण आकांक्षाएँ, उसकी मान्यताएँ एवं आदर्श बिखर चुके हैं। आर्थिक रूप से सम्पन्न व्यक्ति ही समाज में श्रेष्ठ स्थान पाने का अधिकारी है। वर्तमान समय में धन महत्त्वपूर्ण रूप धारण कर चुका है। 'एक ओर गगनचुंबी भव्य भवनों में स्वर्ग की झांकियाँ प्रस्तुत हैं, तो दूसरी ओर दरिद्रता से जर्जर सामान्य जनजीवन के चित्रा बने हुए हैं। सामान्य जन को दो वक्त की रोटी के भी लाले पड़े हुए है। यह आर्थिक वैषम्य समाज की ऐसी खाई है जिसे पाटना कोई सरल कार्य नहीं है।[5]

### आर्थिक सत्ता एवं नारी

स्वतंत्राता के बाद नवीन वैज्ञानिक परिवेश से प्रभावित एवं भौतिकवादी मूल्य दृश्य के अत्याधिक महत्त्व के कारण अर्थ जीवन के केंद्र में प्रतिष्ठित हो गया है। अथवा अर्थ जीवन का लक्ष्य बन गया है। अर्थ की महत्ता ने राजनेताओं और उच्चाधिकारियों के रूप में एक नवधनाढ्य वर्ग को जन्म दिया है। यह वर्ग अत्याधिक धन–लोलुप और भ्रष्ट हैं। सम्पन्नता के अभाव में जीता हुआ वर्ग रातों–रात पूंजी एकत्रा कर करोड़ों–अरबों पति बन जाता है। 'धनी अधिक धनी बनते गए और निर्धन और अधिक संख्या में गरीबी की रेखा से नीचे उतरते गए। सर्वत्रा अराजकता और अशांति पफैलने लगी। उद्योगपति, व्यापारी, विद्यार्थी, नौकरी पेशा वर्ग, मजदूर सभी अपने–अपने स्तर पर आर्थिक भार वहन करते रहे और अपनी–अपनी दृष्टि से अर्थ तंत्रा की आलोचना करते रहे, असंतोष, अभाव और पीड़ा का स्वर सर्वत्रा गहराता गया।[6]

नारी को आर्थिक परिस्थितियाँ प्रभावित करती हैं। अर्थ अर्जन के लिए श्रम करती है। अगर परिवार में पैसे का अभाव है तो सबसे ज्यादा परेशानी नारीको झेलनी पड़ती है। क्योंकि वह गृहस्थी की मालकिन होती है। मधूलिका जी ने कहा है 'आज का युग अर्थ का युग है। धन का महत्त्व जीवन में इतना बढ़ गया है कि जैसे सब कुछ स्नेह, प्यार, मोहब्बत, भाईचारा, धर्म, कर्म, स्वर्ग, नरक सब रुपयों के चारों ओर घूम रहे हैं।[7]

उच्च वर्ग में शोषण की प्रवृत्ति बहुत गहरी है। निम्नवर्ग उसके शोषण के शिकंजे से कभी बच नहीं पाया है। पूरे समाज में एक विभाजक रेखा खींची हुई है। एक ओर पूंजीपतियों का वर्ग है दूसरी ओर शोषित मजदूर कृषक है जो अपना परिवार भी ठीक ढंग से नहीं चला पाते और होता यह है कि परिवार के सदस्य मजबूर हो जाते हैं। मेहरूनिसा परवेज जी ने कहा है 'आज के जमाने में इज्जत सिपर्फ पैसे वालों की है, पैसे से ही दुनिया में सब पूछते हैं। पैसा पास है तो सब पूछेंगे वरना कोई नहीं। पैसा जीवन में सबसे बड़ा बन गया है। इसकी ताकत से सामने की बड़ी–से–बड़ी चट्टान हट जाती है। सभी व्यवधान दूर हो जाते हैं।[8]

अर्थभाव के कारण नारी को काम करना पड़ता है। पढ़ी–लिखी होने पर वह नौकरी भी करती है। दो वक्त की रोटी की तलाश के लिए नारी को स्वयं भी रोजगार ढूंढने पड़ते हैं। डॉ. ज्ञान सिंह मान ने 'दीमक और दायरे' में नारी को आर्थिक परिस्थितियों से जूझते हुए दिखाया गया है। 'सहसा द्वार पर आवाज हुई, उसने घूम कर देखा। भूमि की ओर मस्तक झुकाए माधवी उसके समीप थी। इस समय हरपाल से आँख मिलाकर बात करने का उसमें साहस नहीं था। बेचारी अपनी निर्धनता के बोझ से दबी जा रही थी। एक तो रूप का भार और दूसरे आत्म गौरव की रक्षा का प्रश्न–हरपाल ने उसके स्निग्ध पलकों और तरल कपोल प्रदेश से अनुमान लिया कि वह आंसू बहा कर आ रही है। उसकी गति में पहले सा विश्वास और स्थिरता नहीं थी, परन्तु ऐसे दिन से माधवी के जीवन का अंग बन चुके थे। अपने अतिथि के सामने तो वह अपनी निर्धनता का नाटक नहीं खेल सकती थी। परिस्थिति को संभालने के प्रयास में उसने कह ही दिया, ओह, मैं तो भूल ही गई। आपके लिए अभी दूध गर्म करना है।[9] जीवन की दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए छाया को अपने बाबा की सहायता करनी पड़ती है। 'अधूरी मूर्तियाँ' उपन्यास में दिखाया गया है 'शहरों के कोलाहल पूर्ण वातावरण से दूर जीवन की दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति इतनी सुगम नहीं थी। विशालबाहू को अपने घर का खर्च चलाने के लिए

प्रातः से सायं तक काम करना पड़ता था और छाया को अपने कोमल पैरों से प्रतिदिन लगभग आठ मील की पर्वतीय यात्राा करनी पड़ती थी। घर के एक कोने में पड़े–पड़े रवि ने कभी छाया और विशाल बाहु के उस कठिन जीवन की कल्पना नहीं की थी। घर के सीमित वातावरण से निकलकर ही उसे बस्ती के निर्धन लोगों का परिचय सहज में ही प्राप्त हो गया।[10]

समाज में अर्थाभाव से जूझती नारी को क्या–क्या नहीं सहन करना पड़ता। अपने शरीर की प्यास बुझाने में आतुर पुरुष नारी के स्वाभिमान को पैसों के तराजू में तोल देना चाहता है। 'दीमक और दायरे' उपन्यास में माधवी को साहूकार की अशोभनीय बातों को सहन करना पड़ता है। 'सच्च कहता हूँ, माधवी मेरे घर में एक बार पाँव रख के देखो तुम्हें रानी बना दूंगा, रानी–सिर से पाँव तक गहनों से सजा दूँगा।'

'अभी आप चले जाइए, बाबा घर पर नहीं हैं।'

उत्तर माधवी का था। साहूकार ने तुरंत कहा, 'माधवी, बड़ी भोली हो तुम। हम कोई उस खोंसड़ से थोड़े ही मिलने आये हैं। तुम्हारे रूप की लौ हमें बार–बार खींच लाती है। तुम एक बार हाँ कह दो–सच कहता हूँ, इस झोंपड़ी की जगह महल बनवा दूंगा। तुम्हारा बाबा बुढ़ापे के दिन आराम से व्यतीत करेगा।[11]

'मैली पुतली, उजले धागे' में नारी अपनी ही पोती को धन के लालच में बेचने को तैयार हो जाती है। कामिनी रोते हुए कहती है 'नानी चाहती है कि मैं चंदनगढ़ के कुंवर की रखैल बनकर रहूँ। इसके लिए कुँवर हरदेव सिंह मेरी नानी को पाँच लाख वार्षिक पेंशन देने को तैयार है। नानी अपना बुढ़ापा तो सुख से व्यतीत करना चाहती है, परन्तु इस पुष्प–यौवन को वह कांटों के मोल तोल देना चाहती है।[12] इस प्रकार डॉ. ज्ञान सिंह ने दिखाया है अर्थ के अभाव में नारी जीवन कितना सोचनीय हो सकता है।

**आर्थिक शोषण, दमन और नारी :**

आधुनिक समाज व्यवस्था अर्थ केंद्रित है। इसी कारण अर्थ ने मानव की चेतना कुंठित कर दी है। अर्थ केंद्रित दृष्टि से व्यक्ति संवेदना शून्य बन गया है। 'अर्थ युग की इस आपाधापी में सभी मानवीय रिश्ते अर्थ की दौड़ से जुड़ गए हैं। अर्थ अभाव पति–पत्नी, माँ–बेटी, पिता–पुत्रा, भाई–भाई, प्रेमी–प्रेमिका सभी संबंधों पर प्रश्न चिह्न लगा देता है।[13] बढ़ते हुए आर्थिक वैषम्य, शोषण और उसके कारण पर अपने विचार व्यक्त करते हुए श्री त्रिलोचन शास्त्राी ने लिखा है कि 'इधर आये दिन अधिकाधिक संख्या में लोग सर्वहारा होते चले जा रहे हैं और समस्त संसार की पूंजी खींच–खींच कर इकट्ठी भर पूंजीपति वर्ग पहले से अधिक मोटे होते जा रहे हैं। जब तक यह 'चढ़ा ऊपरी' का राज्य है। तब तक मनुष्य जीवन पफल–पूफल नहीं सकेगा।[14]

शासन तंत्रा ने निम्नवर्ग, किसान व मध्यवर्ग का तो जी भर शोषण किया। परन्तु नारी को सर्वाधिक पीड़ित होना पड़ा। डॉ. इंद्रा राव के एक सर्वे के अनुसार, 'विश्व में आज जितनी सम्पत्ति है उसके 99वें हिस्से पर पुरुष का अधिकार तथा स्वामित्व है और केवल एक प्रतिशत की मालिक महिलाएँ हैं।[15] आधुनिक समाज में नारी शिक्षित होने के कारण नौकरी करने लगी है, जिससे उनका आर्थिक अधिकारों पर स्वामित्व बनने लगा है। डॉ. मंजुलता सिंह आर्थिक अधिकारों पर विचार प्रकट करते हुए कहती है–'आर्थिक संकट से मुक्ति पाने के लिए स्वतंत्रा और आत्मनिर्भर जीवन जीने के लिए, परिवार का आर्थिक स्तर ऊपर उठाने के लिए नारियों का एक बहुत बड़ा वर्ग नौकरी को चुनौती के रूप में प्रस्तुत करता है।[16]

डॉ. ज्ञान सिंह जी ने अपने उपन्यासों में दिखाया है कि नारी आर्थिक रूप से स्वावलंबी कुछ सीमा तक ही हो पाई है। किन्तु आज भी उसका शोषण हो रहा है। पुरुष के शोषण और दमनकारी नीति से अनभिज्ञ नारी को असहनीय कष्ट झेलने पड़ते हैं। 'एक रथ : छह पहिये' उपन्यास में अंजू काम काजी महिला है। उपन्यास में बलराम से उसकी मुलाकात उसके संपूर्ण जीवन को नष्ट कर देता है। बलराम विनय से बदला लेने का एकमात्रा साधन अंजू के लिए ऐसे दमनकारी षड्यंत्रा की रचना करता है, जिससे अंजू का सम्पूर्ण जीवन नष्ट हो जाता है। बलराम की मानसिकता को इन पंक्तियों में दर्शाया गया है 'जब अंजू ने उसे बताया कि वह विनय की बहन है तो उसका चिरकाल से दबा हुआ क्रोध तत्क्षण ज्वालामुखी बनकर पफूट पड़ा था। अंजू की बात सुनकर वह कुछ मिनट सांस तक न ले सका। अंजू से उसकी भेंट न होती तो संभवतः वह विनय से प्रतिकार न ले पाता, बदले की भावना कच्ची गलील लकड़ी की भांति शनैः शनैः धधक कर उसे ही कोयला बनाती जाती। बलराम स्वभाव से ही स्त्राी का भूखा था। अंजू से उसकी भेंट हुई तो उसे दिल्ली में आवश्यक काम आ पड़ा था। वहाँ हजारों की हानि होने की संभावना थी। पिफर भी वह राजधानी छोड़ कर नहीं गया। उसने निर्णय कर लिया कि अंजू को पूर्णतया अपनी बनाए बिना वह कहीं और नहीं जाएगा। अंजू विनय की बहन थी, उसके जीवन से खेल कर विनय से ऐसा प्रतिकार ले सकता था, जिसकी ठेस विनय वर्षों तक सहन करने में असमर्थ रहे।[17]

अर्थ का प्रलोभन देकर नारी के अस्तित्व को धूमिल करने में लिप्त बलराम की मानसिकता को इन पंक्तियों में दिखाया गया है–बलराम ने कार की पिछली सीट पर रखा हुआ पर्स उठाकर अंजू को देते हुए कहा–

'देख लीजिए, कहीं कोई कीमती वस्तु इधर से उधर न हो गई हो।'

'अब रहने भी दीजिए। मुझे आप पर विश्वास है।' अंजू बसन्त–समीर की भांति उन्मुक्त हो गई।

'अंजू ने पर्स खोल कर कहा–शुक्र है मेरी तो जान ही निकल गई थी। टिकटों की गड्डी पर्स में ही है?'

'यह टिकट कैसे?'

'हमारी संस्था अपने आर्ट सैक्शन के लिए नए भवन का निर्माण कर रही है। पैसा इकट्ठा करने के लिए हम शो कर रहे हैं।'

'ओ वंडरपुफल–' बलराम ने उत्सुकता प्रकट करते हुए कहा' अंजू ने जल्दी से टिकट पर्स से निकालेत हुए कहा–'हाँ तो कहिए कितने दूं।' ये पचास–पचास वाली टिकटें हैं? आप ले सकेंगे।'

अंजू ने आशातुर नेत्राों से बलराम की ओर देखा।

'क्यों नहीं, आप कहें और नाचीज–' बलराम के ओठों पर स्निग्धता उमड़ने लगी। उसने अपने पर्स से सौ–सौ के पाँच नोट निकालकर अंजू के आगे रखकर कहा, 'यह लीजिए।'

'वैरी गुड–वॉट एक चैरीटेबल हार्ट। अंजू ने लपककर उन नोटों को इस तरह उठाया जैसे मछली बिना सोम्बे काँटे की ओर लपकती है।

बलराम के लिए यही बहुत था। पाँच सौ में यह मछली महँगी तो नहीं है। सम्भवतः वह मन में सोच रहा था। इधर बलराम के प्रति कृतज्ञ भाव अपने मन में लिए अंजू अपने फ्लैट चली आई। चाहती हुई भी वह अपने मस्तिष्क से बलराम का उदार व्यवहार न निकाल सकी।[18]

उपर्युक्त पंक्तियों में दिखाया गया है कि नारी का आर्थिक शोषण किया जा रहा है। जबकि बलराम आर्थिक शोषण के साथ–साथ नारी सुलभ भावनाओं का दमन करता है। अंजू को पूरी जिंदगी झेलना पड़ता है। 'एक नहीं वह कितने ही चक्कर उसके दफ्तर के समय नौकर ने उसके वेदना–मलीन चेहरे की ओर देखकर कहा–'बीबी जी, आप पढ़ी लिखी हैं। क्या साहब को पहचानने में आप धोखा खा गई?

'आप भी–इससे तुम्हारा अभिप्राय?' नौकर ने मस्तक झुकाकर कहा, 'इस कमरे में कितनी बार हो चुका है–मैं पूरी गिनती नहीं बता सकता।'[19]

उसका मन चीत्कार करने लगा–अरे बलराम, तूने यह क्या किया? मेरे पावन प्रेम का तुमने यह दंड दिया? एक अबला की लाज लूटने के लिए मायवी प्रपंच है। और बलराम, मेरे कौमार्य को भंग करके, मेरी पवित्रा अंक में अपने कलंक को भरने का तुमने दुःसाहस कैसे किया? निष्ठुर प्राणी, मानवता के शत्रु, पिशाच–राक्षस तुम कहाँ हो? आओ और देखो–तुम्हारी क्षणिक भोग–लिप्सा की यह खण्डित प्रतिमा किस प्रकार मृत्यु की चौखट पर अपना माथा पटक रही है। ओ बलराम! यह तुमने क्या किया? क्यों मेरे पवित्रा प्रेम को गंदी गदरा में बहा दिया?[20]

'मैली पुतली, उजले धागे' उपन्यास में लड़की की इच्छाओं का दमन किया जाता है। कामिनी की नारी धन के लालच में उसे राजा का रखैल बना देना चाहती है। रखैल बनने से इंकार करने पर कामिनी और उसके प्रेमी विपिन को षडयंत्रा का सामना करना पड़ता है। इस सब बखेड़े का मूल कारण मेरी नानी है। उन्हें मेरा और विपिन का मिलना पसंद नहीं है। सम्भवतः तुम नहीं जानती किरण, मेरे माता–पिता नहीं है। इस नानी के पास मैं कैसे पहुँची, भगवान ही जानता है। बहुत छोटी थी, तभी से कठपुतली की भाँति अपनी नानी के संकेतों पर नाचती जा रही हूँ। मैंने जीवन में कभी कुछ नहीं चाहा। नानी चाहती है कि मैं चंदनगढ़ के कुंवर की रखैल बनकर रहूँ। इसके लिए कुंवर हरदेव सिंह मेरी नानी को पाँच लाख वार्षिक पैंशन देने को तैयार है। नानी अपना बुढ़ापा से व्यतीत करना चाहती है। तुम नहीं जानती, किरण। मेरी नानी शैतान की लाला है, वह कुछ भी कर सकती है। तुम जो कह रही हो, सब सच है। नानी ने हरदेव से मिलकर ही इस प्रपंच की रचना की है। पुलिसवालों को तो झूठ कर सच किए बिना और काम नहीं है। जाने हमारे पीछे वह क्यों हाथ धोकर पड़े हैं? कहीं अर्थ का अनर्थ न हो जाए, इसीलिए मैं जयपुर छोड़कर इस स्थान पर गुप्त रूप में रह रही हूँ।[21]

इस प्रकार डॉ. ज्ञान सिंह ने अपने उपन्यासों में नारी को आर्थिक रूप से शोषित दिखाया है। नारी नारी की दुश्मन बन कर उसकी कोमल भावनाओं को नष्ट करने पर तुली हुई है ललनाबाई, नानी जैसी औरतें पुरुषों की कुत्सित प्रवृत्ति को बल देते हुए अर्थ लिप्सा में संलग्न है। नारी–सुलभ भावनाओं और उनकी मानसिक, शारीरिक वेदना से उनका कोई सरोकार ही न हो।

**निर्धनता : विश्वास एवं बेबसी :**

निर्धनता ईश्वर की देन नहीं है। यह तो मानव के द्वारा मानव का शोषण है। निर्धनता एक सामाजिक समस्या है। इसे आर्थिक समस्या इसलिए कहा जाता है, क्योंकि धनाभाव के कारण ही निर्धनता उत्पन्न होती है तथा सामाजिक समस्या इसलिए है, क्योंकि धनाभाव की दशाएँ सामाजिक जीवन पर प्रभाव डालती है। 'निर्धनता का तात्पर्य एक ऐसे अभावग्रस्त जीवन से है जो समाज के सामाजिक–आर्थिक कुसमायोजन से उत्पन्न होता है तथा जिसके पफलस्वरूप व्यक्ति अपनी तथा आश्रितों की अनिवार्य आवश्यकताओं को पूरा करने में असमर्थ रहता है।[22] समाजशास्त्रा मानता है कि यदि किसी व्यक्ति के पास जीवन की आवश्यकताएँ, सुविधाएँ और मनोरंजन के साधन नहीं हैं या ये तीनों समुचित वस्तुएँ नहीं हैं, तो उस व्यक्ति को हम निर्धन कह सकते हैं।[23] डॉ. विपिन गुप्ता के अनुसार 'निर्धनता के दुष्चक्र से अभिप्राय है कि विभिन्न शक्तियाँ जिनमें आर्थिक पिछड़ापन, निम्न आय, निम्न उत्पादकता, निम्न माँग के ऐसे घेरे में है जो एक दूसरे पर इस प्रकार प्रतीत करती है कि निर्धन व्यक्ति निर्धन ही रहता है।[24] इस मानदण्ड के अनुसार भारत की अधिकांश जनता गरीबी से भी नीचे स्तर पर जी रही है। निर्धनता के कारण भारतीय नारी विवश एवं बेबस है। गरीब होने के कारण उनको अमीर अथवा सम्पन्न वर्ग से तिरस्कार मिलता है। 'दीमक और दायरे' उपन्यास में निम्नवर्गीय माधवी को दादी सास से तिरस्कार मिलता है, जिसके परिणामस्वरूप हरपाल को राजा होते हुए भी दयनीय दशा में जीना पड़ता है। इन सबका कारण स्वयं को समझते हुए माधवी आँसू बहाती है 'माधवी के पास विचार नहीं, हृदय सरसी से उमड़ने वाले स्निग्ध आँसुओं की लड़ियाँ थी. उन्हें ही वह अपनी गलदश्रु भावुकता के साथ लपेटे जा रही थी। वह द्रवित नारी तो पिछले आठ वर्षों से उसके साथ कंटीली राहों पर बिना किसी आंतरिक द्वेष और दुराव के चलती आई थी। वह बिलख उठी आपने इतना कष्ट उठाया वह भी केवल मेरे लिए, इस पापात्मा के कारण ही आज आप ही यह दशा हो रही है। जी में आता है मैं यहीं पफर्श पर माथा–पटक–पटक कर अपने जीवन का अंत कर दूँ। आप मुझसे ब्याह न रचाते तो अच्छा होता, माँ जी ठीक कहती थी गली की ईंट देवमंदिर की शोभा नहीं बन सकती। मैं आपके राजसी वंश के योग्य नहीं हूँ–क्यों आपने मेरी लिए दादी माँ से शत्रुता मोल ली है? भगवान के लिए मुझे मेरे हाल पर छोड़ दीजिए। अपने बच्चों को लेकर मैं इस अनन्त विश्व में कहीं भी अपने लिए ठिकाना खोज लूंगी। इस प्रकार मैं आपका अपमान नहीं देख सकती। नीचे सड़क पर बजने वाला ढोल में अंतर्मन को हिंस जंतु की भांति खाये जा रहा है, मैं सब कुछ सहन कर सकती हूँ, परन्तु मेरे सरताज की और माधवी पिफर से अपना माथा पफर्श से पटकने लगी। जैसे जीने का उसे मोह ही नहीं रहा।[25]

डॉ. ज्ञान सिंह मान ने अपने संपूर्ण साहित्य में निर्धनता का वर्णन किया है। 'सिमटता सागर' में लेखक ने इंदिरा गांधी द्वारा दिए गए नारे 'गरीबी हटाओ' की सार्थकता का चित्राण मि. मुंझाल के माध्यम से किया है–

'मुंझाल साहब, कुछ भी हो, आपकी अपरोध निगेटिव है।'

'तो इंदिरा जी की गरीबी हटाओ' क्या है? गांधी जी का अहिंसावाद क्या है? 'निगेटिव' और 'पॉलिटिव' क्या दृष्टिकोण का ही भेद है? जो सम है क्या दूसरे पहलू से विषम नहीं हो जाता।'

'लेकिन गरीबी हटाओ के पीछे उदात्त भावना है।'

'वाह रे पीर।'

'मुंझाल साहब उधार खाए बैठे थे।'

'अजय बाबू, आपके होते, हम गरीबों की मजूरी मारी जाए।

'दीमक और दायरे' उपन्यास में माधवी कंवर से कहती है कि वह उनकी निर्धनता का उपहास न उड़ाए–

उसे ऐसा लगा किसी लम्पट व्यक्ति ने उसके वक्ष पर पड़ा महीन वस्त्रा चिथड़े–चिथड़े करके उड़ा दिया है। अपनी लुटती लाज को बचाने के लिए जैसे कोई अबला चीत्कार कर उठती है,वैसे ही मर्म–भेदी स्वर में माधवी चीख उठी, 'भगवान के लिए हमारी निर्धनता का इस प्रकार उपहास मत उड़ाइए– घर आया अतिथि तो परमेश्वर होता है। अतिथि के लिए तो हम अपने प्राण तक न्यौछावर कर देते हैं पिफर आप–' माधवी का स्वर अस्थिर हो गया उसका शरीर शुष्क पत्ते की भांति कांप सा गया। भाव विह्वल होकर वह हरपाल के पैरों पर गिर पड़ी, भर्राये कण्ठ से बोली, 'कुंवर साहब, आप बड़े आदमी है। ये नोट आपके लिए चंद सिक्कों सा महत्त्व रखते हैं। परन्तु हम गरीबों के पास अहं और आत्म–सम्मान ही तो हमारी पूंजी है, आप उन्हें भी लूट लेना चाहते हैं, परन्तु क्यों।

'दीमक और दायरे' उपन्यास में बाल सिंह अपनी गरीबी के कारण कुंअर साहब से सूद, पर पैसे लेने जाता है–'हाँ सरकार, उसकी माँ को बचाने के लिए मैंने साहूकार से तीन हजार रुपये कर्ज लिए थे। शहर का बड़ा डॉक्टर कहता था कि पेट में गोला है, बड़ा ऑप्रेशन करना होगा, हम गरीब लोग इतना बोझ कैसे उठा सकते हैं।' कहते–कहते बाल सिंह का चेहरा विषण्ण हो गया। वाणी तरल हो आई, उसने सांस लेकर कहा, 'उसे बचाने के लिए मैंने तीन हजार दांव पर लगा दिए–हार गया– मैं हार गया, कुंवर साहब–' वृ( बाल सिंह भावुक हो उठा। वर्षों से विस्मृत विषाद पत्नी का स्मरण करने

पर उसके शरीर में सिहरन उत्पन्न कर गया–'वह मर गई और मैं कर्ज के बोझ में दब गया। सूद की रकम तक देने को मेरे पास पैसा नहीं रहा। हमारी नई सरकार बनने की रियासत की नौकरी भी जाती रही। अब तो, अब तो, बाल सिंह, कह न सका, अपने मन को इतनी सुगमता से तो व्यक्त नहीं कर सकता था। दीर्घ श्वास लेकर उसने अपना काम आरंभ कर दिया। हरपाल ने कुछ सोचकर धीमे स्वर में कहा, 'कितना रुपया होगा? मेरा मतलब सूद आदि की रकम मिलाकर कितना तुम्हारे सिर पर है–'कुंवर साहब–जब मैं चुका ही नहीं सकता तो पिफर गिनती क्यों करूँ–हाँ साहूकार तकाजे के समय कह देता है–पाँच हजार हो गए हैं, पाँच हजार।
सूदखोर भोले–भाले लोगों से तीन का छह रुपया वसूल करते हैं।
कई बार सूदखोर जब किसी लेनदार से पैसे वसूलने आते हैं तो उनकी नजर उनकी बहू–बेटियों पर भी होती है, वे उनकी इज्जत का भी सौदा करना चाहते हैं। 'दीमक और दायरे' में माधवी कुंवर साहब को यही बताती है–'कुंवर साहब, धनी लोगों के पास क्या आत्मीयता का कोई भाव नहीं होता? क्यों उनकी दृष्टि बाह्य रूप तक ही सीमित रहती है। अभी–अभी एक साहूकार आया था, वह अपने धन के बल पर मेरे शरीर और बाबा की इज्जत का सौदा करना चाहता था–और आप–' माधवी के लिए कहना कठिन हो गया। उसकी सांस पूफल रही थी, वह लम्बी हिचकी भरकर बोली, 'आप मेरी आत्मा को खरीदना चाहते हैं, क्यों?'
और माधवी ने अपना मस्तक चारपाई पर पटक दिया। वह अपने व्यवहार पर लज्जा का अनुभव करने लगा परन्तु माधवी के इस प्रकार के आंसुओं को भी तो वह नहीं देख सकता था। उसने साहस बटोर कर अपना अस्थिर सा हाथ माधवी के मस्तक पर रख दिया। एक आत्मीय स्पर्शः कुछ सोचता हुआ बोला।
इस प्रकार लेखक ने दिखाया है कि निर्धनता उस दुस्वप्न की तरह है जो हमें न दिन में और न रात में चैन लेने देता है। इस निर्धनतावश मनुष्य आर्थिक मूल्यों को ताक पर रख देता है। वह विवश होकर या तो आत्महत्या कर लेता है या बुरे कार्य करने लगता है ताकि इस निर्धनता रूपी बीमारी को दूर कर सके। लेकिन आज जरूरत है आत्मविश्वास तथा मेहनत की, अपनी मेहनत के बल पर ही हम इस बुराई को दूर कर सकते हैं। इस समस्या को दूर करने में जहाँ सरकार को निर्धन व्यक्ति के लिए रोजगार उत्पन्न करके उनकी मदद करनी चाहिए।

**महंगाई : आय–व्यय का असंतुलन एवं नारी**

कीमतों के निरंतर बढ़ते जाने से वस्तुओं के मूल्य में वृ( हो जाना महंगाई कहलाता है। स्वतंत्राता के बाद यह एक ऐसी जटिल और विषम समस्या बन गयी है, जिसको आम–आदमी से लेकर सरकार तक सभी परेशान हैं। इसमें सभी का बजट असंतुलित हो जाता है। महंगाई सभी को कचोटती है। नौकरीपेशा व्यक्ति का महंगाई दोहरी मार मारती है। एक ओर वह सामाजिक रख–रखाव में मरता है और दूसरी ओर आय–व्यय का जोड़–तोड़ करते हुए परेशान रहता है। आम आदमी की महत्त्वकांक्षाएँ भी दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं। आमदनी बढ़ने का नाम नहीं लेती जबकि वस्तुओं की कीमतें बाजार में आकाश छूने लगती है।
डॉ. विपिन गुप्त जी लिखते हैं 'भारत में स्वतंत्राता प्राप्ति के बाद विकास परियोजनाओं के माध्यम से आर्थिक विकास गति में तीव्रता होने लगी। जहाँ उत्पादों में मूल्य वृ( हुई, वहीं मजदूरी की दरें भी बढ़ी। प्रायः उत्पादक वस्तुओं की कीमतें बढ़ाकर अपना बचाव कर जाता है, परन्तु कर्मचारी नियोक्ता पर निर्भर करता है। सामान्य आय वाला व्यक्ति अपने परिवार की आवश्यकताओं की पूर्ति करने में स्वयं को असमर्थ पा रहा है। कीमतें एक बार बढ़ जाने पर कम होने का नाम नहीं लेती।[26] चक्की के इन दो पाटों में पिसती हुई नारी न तो अपनी लालसाओं को छोड़ सकती है और न ही अपनी आय बढ़ाने के साधन खोज सकी है। इससे उसकी आय एवं व्यय का संतुलन बिगड़ जाता है। निर्धनता नारी जीवन को प्रभावित करती है, यह पूर्णतया सत्य है। 'मैली पुतली, उजले धागे' में कला आर्थिक अभावों से जूझती है, लेकिन स्वाभिमान के कारण किरण से किसी प्रकार की सहायता प्राप्त करनाआपत्तिजनक है। कला इस बात को भली–भांति जानती है। 'विपिन अपनी पत्नी के साथ जिस तरह का साधार एवं तंग आर्थिक जीवन व्यतीत कर रहा था, वह किसी से छिपा तो था नहीं। कहीं कला के मन पर कोई हीनभावना घर न कर जाए, इसलिए किरण अत्यंत ही साधारण वेश में विपिन के घर जाया करती थी। उस दिन भी उसने टैक्सी को कापफी दूर छोड़ दिया, पैदल चलते–चलते मन में आया कि वह कला के लिए कुछ लेती चले। साड़ी या कोई और–परन्तु नहीं। सहसा किरण के पाँव थिरक गए। वह कला और उसके पति के लिए कुछ भी ले जाने का साहस न बटोर सकी। ध्यान कुछ महीने पूर्व की घटना की ओर आकृष्ट हो गया।
किरण जो थोड़ी–बहुत वस्तुएँ कला के लिए लेकर गई थी, कला ने उन्हें खुले मन से स्वीकार नहीं किया था। उसकी स्वागती मुस्कान और सजल नेत्राों में आंतरिक व्यथा स्पष्ट झलक रहे थे। किरण की ओर भावुक नेत्राों से देखकर कला ने कहा, 'दीदी, ये सब मैं स्वीकार नहीं कर सकती। उन्हें अच्छा नहीं लगता। आगे ही क्या आप लोगों का हम पर क्या उपकार कम है? कला ने सांस भरकर कहा, 'दीदी, अच्छा होता, वे मेरे जीवन में न आते–गुण्डे अधिक से अधिक मेरा शरीर ही तो ले पाते? शरीर के लुट जाने पर भी मैं अपनी सुख–सुविधा के साधन जुटा सकती थी, परन्तु मेरे कारण ये और भी दुःखी हो गए। नहीं दीदी! अब मैं उनकी आज्ञा के बिना कुछ भी स्वीकार नहीं कर सकती। पिफर यह अच्छा भी नहीं लगता। हम किस–किस की अनुकम्पा का ट्टण चुकता करेंगे? अशांत आह भरकर किरण गहरी वेदना को साकार करती हुई बोली–'कला मैं जानती हूँ, कुछ दिनों से उनके चित्रा बिक नहीं रहे हैं, इसीलिए अपना समझकर घर की ये चीजें लेती आयी। यदि वे बुरा मानें तो अपने हाथों से इन्हें बाहर पफेंक देना। और किरण वहाँ से चली गई। आर्थिक संकट के कारण कला का दृढ़ संकल्प अस्थिर होने लगा था, परन्तु पति का सम्मान।[27]
डॉ. ज्ञान सिंह मान ने 'दूसरा पतझड़' में महंगाई की समस्या को सर्वेश और सुगंधा के माध्यम से चित्रिात किया है–'सहसा बाजार की दुकानों के शटर नीचे गिरने की गड़गड़ाहट चारों ओर पफैलने लगी। सामने सड़क में एक अजीब–सी अपफरा–तपफरी बढ़ रही है। सर्वेश काउंटर से झुककर बाहर देखता है। पास ही चौक पर छात्राों का जुलूस है, लाठी–चार्ज होते ही दबी आवाज भीड़ में दम तोड़ रही थी–
'लाठी गोली की सरकार।'
'नहीं चलेगी–नहीं चलेगी।'
'बस का पहिया जाम करेंगे।'
'बढ़ती कीमतें जाम करेंगे।'
'नई सरकार।'
'मुर्दाबाद! मुर्दाबाद!'
'विद्यार्थी एकता–'
'जिंदाबाद! जिंदाबाद!'[28]

प्रस्तुत उपन्यास में ही महांई का चित्राण शर्मा जी और सर्वेश के वार्तालाप के माध्यम से किया है।
'शर्मा जी–'
सर्वेश दूर तक पफैले धान के खेतों को एकटक दृष्टि से निहारता है।
'परिश्रम तो ठी है, किंतु, अनुदान–महंगाई तो दिन–ब–दिन'
'ठीक कहते हो, नौजवान–'

शर्मा जी अपनी छड़ी से नीचे पैरों के समीप की मिट्टी बिखेर देते हैं। गले को ठीक बंद करते हुए कहते हैं,
'न जाने महंगाई के इस अजगर की भूख कब मिटेगी–
यह तो सब निकल कर भी–'
'जाने आजकल लोग गुजारा कैसे करते हैं?'
'खासकर वे जिन पर बेटियाँ हैं, शादी–ब्याह का पिफक्र है?'
'हमारे घर मैं एक ही लक्ष्मी है तभी इतनी चिंता खाए रहती है, जिनके चार–चार।'[29]
इस प्रकार लेखक ने आज के युग में बढ़ रही महंगाई का चित्राण सपफलता से किया है। सरकार को महंगाई पर रोक लगानी चाहिए ताकि गरीब आदमी दो वक्त की रोटी खा सके।

**बेरोजगारी : नियति अथवा सत्ता का अभिशाप :**
आज भी मध्यवर्गीय युग का प्रथम लक्ष्य रोजगार प्राप्ति है। इस देश में शिक्षा का रोजगार से सीधा संबंध है। मध्यवर्ग के पास स्वरोजगार के साधनों का अभाव है। अतः बेरोजगारी की मार इसी वर्ग को अधिक झेलनी पड़ती है। 'बेरोजगारी उस दशा को कहते हैं, जिसमें कि कोई समर्थ व्यक्ति जो अपने लाभ, अपने परिवार के पालन के लिए अपनी मेहनत व कमाई पर निर्भर करे, इच्छा होते हुए भी उतना कार्य प्राप्त न कर सकें, जितना कि वह सुगमता से कर सकता है और करने की इच्छा रखता है।[30] दूसरे शब्दों में बेरोजगारी वह स्थिति है, जिसमें एक व्यक्ति जो काम करने के योग्य है और प्रचलित मजदूरी की दर पर काम करने के लिए इच्छुक है पिफर भी उसे काम नहीं मिलता। डॉ. विपिन गुप्त ने भी बेरोजगारी के विषय में कहा है, 'ज्ञान–विज्ञान, विकास योजनाएँ या प्रतीत होते हैं, जब बेरोजगारी किसी भी देश की आर्थिक दुर्गतियों, हीनताओं और दिवालियेपन का प्रतीक है। 'बेरोजगारी श्रमिक बाजार की वह स्थिति है, जिसमें श्रमिक की पूर्ति उपलब्ध सुअवसरों से अधिक होती है।[31] यह एक सामाजिक आर्थिक समस्या है।
बेरोजगारी शिक्षित नवयुवकों के लिए बहुत बड़ी समस्या बन गयी है। बड़ी–बड़ी डिग्रियाँ लेकर युवक आवेदन–पत्रा भरते–भरते थक जाते हैं। साक्षात्कार देते–देते ऊब जाते हैं, लेकिन पिफर भी नौकरी नहीं मिल पाती। आज न केवल पढ़े–लिखे नौजवान बेरोजगार हैं बल्कि खेतों में काम करने वाले मजदूर भी बेरोजगार होते हैं।
डॉ. ज्ञान सिंह मान ने भी रोजगारी के विषय में अपने उपन्यासों में लिखा है, 'जलते कलश' उपन्यास में बेरोजगारी का बखूबी चित्राण किया गया है। प्रस्तत उपन्यास में प्रदीप द्वारा नौकरी के लिए मारा–मारा पिफरना बेरोजगारी को चित्रित करता है–'प्रतीक्षालय में वह अधिक समय नहीं बैठ सका। मन की उद्विग्नता प्रतिपल बढ़ रही थी। छोटे से कमरे में उस जैसे कितने ही दूसरे भद्र व्यक्ति भी थे जो उस अच्छी नौकरी के लिए सम्भवतः सैंकड़ों मीलों की यात्राा तय करके आये थे। सब व्यक्ति एक ही लक्ष्य को लेकर वहाँ जुटे थे, सबका आशय 'टी–एस्टेट' में अपने भाग्य की आगामी रूपरेखा संवारना था। इतना होने पर भी सभी एक–दूसरे के लिए कितने अपरिचित और असंग बने हुए थे। एकत्रित उम्मीदवारों में बहुधा तो कुद न कुछ पढ़ने में तल्लीन थे और जो शेष थे जो सिगरेट के धुएं में अपनी आँखों की मादकता छलका रहे थे। दो एक के हाथों में सस्ता साहित्य भी था। सबसे परे प्रदीप को अपने जैसा ही अस्त–व्यस्त युवक दिखाई दिया।
वह खिड़की पर झुका बाहर देख रहा था। आसामी केवल एक थी और इसके लिए इतने उम्मीदवार। उपस्थित व्यक्तियों में केवल एक को ही अपने भाग्य का विश्वास पाना था और वह भी सांझ ढले। ओपफ! कितनी गर्मी है यहाँ। प्रदीप ने घड़ी में समय देखा, दो बज रहे थे। न जाने अभी और कितनी देर रुकना होगा। दृष्टि उठाकर उसने छत से लगे विद्युत यंत्रा की ओर देखा–वायु का शीतल प्रवाह, कृत्रिम वेग से पूफटती क्षणिक सरसता। उसने रुमाल से अपनी गर्दन पर उमड़ रहे स्वेद कणों को स्वच्छ किया। तंग कमरे के घुटनमय वातावरण से वह भाग जाना चाहता था। परिस्थितियाँ प्राणी को कहाँ से कहाँ ले जाती है। पिफर भी यदि उसे आत्मगौरव की रक्षा करनी है तो वह सब सहन ही करना पड़ेगा।
प्रस्तुत उपन्यास में प्रदीप को नौकरी पाना एक बड़ी खाई के समान नजर आने लगता है–'दो मित्रों में प्रेम की यह सरल भावना वर्षों के अंतराल के उपरांत भी पफीकी नहीं थी। प्रदीप केवल अपने और सुबी के बीच बढ़ती आर्थिक खाई के प्रति अधिक सचेत था। देश को स्वतंत्रा हुए एक लम्बा समय बीतने को था, परन्तु प्रदीप जैसे असंख्य शिक्षित व्यक्तियों का भविष्य अभी तक अनिश्चित, धूमिल एवं प्रच्छन्न बना हुआ था। अपने देश की अपनी राजसत्ता में भी यदि अहं को मारकर जीविका का साधन जुटाना पड़े तो स्वतंत्राता का अर्थ ही क्या रह जाता है। अपने देश में तो व्यक्ति को मस्तक ऊँचा करके चलना चाहिए। प्रदीप पिछले वर्षों में हुए परिवर्तन के बारे में सोचकर उद्विग्न हो उठा।'
स्वतंत्राता प्रापित के बाद, हम सबका सपना था कि हमें भरपेट भोजन मिलेगा, योग्यानुसार काम मिलेगा लेकिन हुआ इसके विपरीत। आज भी लोग पफुटपाथ पर सोने के लिए मजबूर हैं। हर कार्यालय में 'जो वेकेन्सी' का बोर्ड देखकर झल्लाते हुए डिग्रियाँ पफाड़ देते हैं या यह केवल किसी एक राज्य की स्थिति नहीं बल्कि संपूर्ण राष्ट्र की समस्या है। इस समय हमारे देश की अर्थ व्यवस्था में दरार आ गयी है। आज पढ़े–लिखे बेरोजगारों की संख्या अधिक है। पढ़े–लिखकर सभी नौकरी की आशा रखते हैं, लेकिन वह आशा बेकारी की ठोकरों से निराशा में बदल जाती है।
बेरोजगारी ने नवयुवकों को बुरी तरह से तोड़ दिया है। नौकरी पाने के लिए अनेक प्रयास करने पड़ते हैं, लेकिन कहीं–न–कहीं, कोई–न–कोई रुकावट रास्ते में खड़ी हो जाती है।
'जलते कलश' में इस समस्या का चित्राण प्रदीप के माध्यम से किया है–
'नहीं प्रदीप' सुवी ने अपनी टांगों को कुर्सी के नीचे सरकाते हुए उसकी बात काट दी, 'नौकरी की खोज हर शिक्षित व्यक्ति का वैधानिक अधिकार है। छोटा या बड़ा होना नौकरी पर आधारित नहीं है, सभी व्यक्ति अपने–अपने क्षेत्रों में नौकर होते हैं। पिफर नौकर तो नौकर ही है, बड़ा हो या छोटा–खैर।'
सुबी ने 'जैम' की शीशी प्रदीप के आगे सरकारते हुए अपनी वार्ता में लघु रिक्तता भर दी।
'इसे भी लो, बहुत अच्छा है–गुड टेस्ट।'
'नहीं, और नहीं–कापफी से चुका हूँ।'
'अरे भई, नहीं।'
अनुरोध बढ़ता गया और इधर वार्ता का वही आत्मगत दर्शन–
'तुमने बताया नहीं पहले वाली नौकरी क्यों छोड़ी? तुमने लिखा था तुम किसी सरकारी कॉलिज में सीनियर पोस्ट पर थे। पिफर यह सब–इतना पढ़कर इस प्रकार की नई नौकरी–[32]
बेरोजगारी शहर और गाँव दोनों में तेजी से पफैल रही है। ऊँचे संस्थानों में पढ़ने के बाद भी युवक बेरोजगार होते जा रहे हैं।
'खुलते–बंद सीप' में प्रदीप की मनोस्थिति को प्रस्तुत किया गया है–
'एम. कॉम करने के बाद प्राइवेट संस्थाओं में नौकरी करने की क्या आवश्यकता थी। चाहता तो सरकारी नौकरी सुगमता से पा सकता था पिफर?
कहते–कहते दिलीप रुक जाता है, कोकाकोला सिप नहीं हो रहा है। असमंजस बढ़ रहा है। खाने में अधिक बौ(कि आहार बल पकड़ रहा है। सत्यपाल कुर्सी से पीठ सटाकर कहता है–
'यही मैं भी सोचा करता था–परन्तु बात स्पष्ट है। सरकारी नौकरी से उसकी आप सीमित होने की आशंका थी। हो सकता है इसीलिए वह तुरंत सर्विस में न गया हो।[33]

इस प्रकार लेखक ने चित्रित किया है कि बेरोजगारी हमारे देश में किस प्रकार बढ़ चुकी है। आजकल पढ़े–लिखे नौजवान बेकार हो चुके हैं। वे आत्महत्या कर रहे हैं। अनैतिक कार्यों की ओर प्रवृत्त हो रहे हैं। सरकार को चाहिए कि वह अधिक से अधिक रोजगार के अवसर उपलब्ध करवाये। अधिक से अधिक ट्टण की व्यवस्था करे ताकि नवयुवक लघु–उद्योग धंधों को अपना सकें।

## निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि डॉ. ज्ञान सिंह मान ने अपने उपन्यासों के माध्यम से समाज में निरुपित आर्थिक संदर्भ को बखूबी चित्रित किया है। उनकी पैनी दृष्टि हर क्षेत्रा में दौड़ी है। उन्होंने नारी जीवन, अर्थ की उसके जीवन में महत्ता, पुरुष की भ्रष्टाचार और दुर्व्यवहार की दमनकारी नीति के कारण नारी की दयनीय स्थिति का विस्तृत वर्णन किया है। अर्थ के कारण नारी अपनी इच्छाओं को दबा कर रखती है। उसका जीवन सीमित हो जाता है। यहाँ तक कि दैनिक प्रयोग में लाई जाने वाली वस्तुओं का प्रयोग भी नहीं कर पाती। समाज में नारी के प्रति हो रहे आर्थिक शोषण का विरोध करना चाहिए। मेरी दृष्टि में नारी को आर्थिक समानता का अधिकार होना चाहिए।

धन के लिए हो रहे अत्याचार बिल्कुल अन्यायपूर्ण है। नारी को पीड़ित किया जाता है, जिसके कारण वह आत्महत्या तक करने को तैयार हो जाती है। हम सबको मिलकर हो रहे इस नारी अत्याचार अथवा दुर्व्यवहार का विरोध करना होगा। मेरी दृष्टि में महंगाई और बेरोजगारी दोनों विरोधात्मक बातें हैं। एक ओर तो बेरोजगारी है और दूसरी ओर वस्तुओं के दामों में वृ( हो रही है। जिसके कारण नारी का सामान्य जीवन अस्त–व्यस्त हो गया है। समाज में नारी को सम्मान दिलाने के लिए उसे आर्थिक–अधिकार भी समान मिलने चाहिएं। उसका दमन नहीं होना चाहिए।

## संदर्भ सूची ग्रथं


1. डॉ॰ भोलानाथ तिवारी, आधुनिक हिंदी साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, पृ. 201
2. डॉ. हेमेन्द्र कुमार, स्वातन्त्रयोत्तर हिंदी उपन्यास : मूल्य संक्रमण, पृ. 204
3. बी.एल. गुप्ता, प्रारंभिक अर्थशास्त्रा, पृ. 1
4. सं. लक्ष्मी नारायण शर्मा, परिशोध, अंक 34–35, पृ. 15
5. डॉ. रवीद्र कुमार सिंह, संत काव्य की सामाजिक प्रासंगिकता, पृ. 57
6. डॉ॰ अरुणा गुप्ता, छठे दशक की हिंदी कहानी में जीवन मूल्य, पृ. 238
7. मधुलिका, प्राणों की प्यास, पृ. 153
8. महरूनिसा परवेज, कोरजा, पृ. 121
9. डॉ. ज्ञान सिंह मान, दीमक और दायरे, पृ. 44
10. वही, अधूरी मूर्तियाँ, पृ. 71
11. डॉ. ज्ञान सिंह मान, दीमक और दायरे, पृ. 42
12. वही, मैली पुतली, उजले धगे, पृ. 141
13. डॉ. रमेश गौतम, वीणा गौतम, नरशिल्पी शंकर शेष, पृ. 127
14. डॉ. प्रेमचंद विजयवर्गीय, आधुनिक हिंदी कवियों का सामाजिक दर्शन, पृ. 316
15. डॉ॰ इंद्रराव, नारी मुक्ति : सच था ढकोसला, उद्धृत दैनिक ट्रिब्यून, 23 अप्रैल, 1999
16. डॉ. ज्ञान सिंह मान, एक रथ : छह पहिए, पृ. 46
17. डॉ. ज्ञान सिंह मान, एक रथ : छह पहिए, पृ. 134
18. डॉ. ज्ञान सिंह मान, एक रथ : छह पहिए, पृ. 146
19. वही, मैली पुतली, उजले धगे, पृ. 143
20. डॉ॰ गोपाल कृष्ण अग्रवाल, सामाजिक विघटन, पृ. 287
21. डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार, समाजशास्त्रा, पृ. 64
22. डॉ. ज्ञान सिंह मान, दीमक और दायरे, पृ. 17
23. वही, खुलते बंद सीप, पृ. 60
24. वही, दीमक और दायरे, पृ. 52
25. डॉ. ज्ञान सिंह मान, दीमक और दायरे, पृ. 50–51
26. डॉ॰ विपिन गुप्त, हिन्दी नाटक में समसामायिक परिवेश, पृ. 149
27. डॉ. ज्ञान सिंह मान, मैली पुतली, उजले धगे, पृ. 186
28. डॉ. ज्ञान सिंह मान, दूसरा पतझड़, पृ. 90
29. डॉ. ज्ञान सिंह मान, दूसरा पतझड़, पृ. 70
30. डॉ॰ वीरेन्द्र नाथ सिंह, नगरीय समाजशास्त्रा, पृ. 194
31. डॉ॰ विपिन गुप्त, हिन्दी नाटक में समसामायिक परिवेश, पृ. 146
32. डॉ. ज्ञान सिंह मान, जलते कलश, पृ. 21
33. डॉ. ज्ञान सिंह मान, खुलते–बंद सीप, पृ. 92